निबंध

शीर्षकः 'बनला के सब सार होला आ बिगड़ला के कोई पाहुनो न होखे।'

(लेखनः आर. प्रत्यूष, बिहार नमन जीएस में निबंध के फैकल्टी)

प्रसिद्ध गीतकार **राजेन्द्र कृष्ण** के गीत **'सुख के सब साथी, दुःख में न कोई'** की यह पंक्ति उपरोक्त लोकोक्ति का भाव बहुत हद तब स्पष्ट कर देती है। बनला अर्थात् जो काम बन गया हो (सफल हो गया हो) का श्रेय हर कोई लेना चाहता है जबकि वह काम जो बिगड़ चुका है उसकी जिम्मेदारी लेने कोई आगे नहीं आता। उपरोक्त लोकोक्ति बिहार की **स्थानीय बोली भोजपुरी** की है जिसका शब्दार्थ है कि बने हुए का तो हर कोई **सार** (पत्नी का भाई) होने को भी तैयार रहते हैं जबकि बिगड़े हुए के **पाहुन** (अर्थात् बहन का पति) भी नहीं बनना चाहते। इस निबंध को समझने के लिए छात्र/छात्रा से बेहतर और कौन हो सकता है। विद्यार्थी जीवन में कहीं न कहीं यह लोकोक्ति चरितार्थ अवश्य होती है। चूंकि एक विद्यार्थी अध्ययन के दौर में सफलता और असफलता का मतलब बखुबी समझ चुका होता है कि समाज का व्यवहार बनने वाले के साथ और बिगड़ने वाले के साथ किस प्रकार बदलता है।

आप तो जानते ही होंगे कि हमारे देश और राज्य में युवाओं की संख्या बहुत हैं। यहां की लगभग **27.3%** आबादी नौजवान की है और उनमें से अधिकांश बेरोजगार है। बेरोजगार युवागण लंबे समय से बड़ें-बड़ें शहरों जैसे दिल्ली, प्रयागराज या पटना में विभिन्न प्रकार के कंपटीशन की तैयारी कर रहे है। लेकिन बार-बार असफल होने के क्रम में जब वे साधारण बनकर अपने गांव जाते होंगे तो समाज और परिवार की दृष्टि उनपर कैसी पड़ती होगी, यह आपसे बेहतर भला और कौन जान सकता है? उनका मन करता होगा कि किसी कोने में बैठकर खूब रोए। एकांत में जाकर खुद पर चिल्लाए। वे प्रतिज्ञा करते होंगे कि इस बार नौकरी लेकर की ही लौटेंगे। जब वे कड़ी मेहनत करके नौकरी पा लेते हैं और वापस अपने गांव जाते है तब उन्हें मालूम पड़ता है कि गाँव की सारी मिठाइयाँ उन्ही के लिए बनी हैं। जिस तरह से उनका गांव और परिवार वालों द्वारा स्वागत किया जाता हैं और सभी अंजान लोग भी खुद को उनका रिश्तेदार बताते हैं, यह स्थिति काफी है इस लोकोक्ति के भावार्थ को संदर्भित करने के लिए।

यदि कोई विद्यार्थी कड़ी मेहनत व लगन से अपनी मंजिल पा लेता है तो समाज के लोग दूरे से कहते फिरते है कि उसका मार्गदर्शन हमने ही किया था। हमने ही उस परीक्षा की तैयारी का रहस्य बताया था, इसीलिए आज वह अपने लक्ष्य को भेद पाया है। इसी होड़ में तमाम कोचिंग संस्थान भी लगे रहते हैं। एक ही विद्यार्थी की सफलता का दावा कई संस्थान अपने संस्थान से जोड़कर करते हैं। हाल ही में दिल्ली के कुछ सिविल सर्विसेज की तैयारी कराने वाले संस्थानों पर झूठे दावों और भ्रामक प्रचार-प्रसार का दोषी पाते हुए भाड़ी आर्थिक जुर्माना लगाया गया है।

हर समाज में यह परंपरा देखने को मिल जाती है। कोई भी लोग हो सफलता का श्रेय लेने के लिए लोग बेचैन रहते हैं। अर्थात् सुख बांटने वाले तो हर वक्त हर जगह मिल जाते हैं परंतु दुःख बांटने वाले शायद ही कोई मिल पाता। इस दुनिया की रीत है कि उगते सूर्य की सब कोई पूजा करता है। भौतिकवादी दुनिया में व्यक्ति अपना रिश्ता आर्थिक नफा-नुकसान देख कर रखता है। यदि किसी को कुछ लाभ मिल रहा है तो वह हर शर्त पर संबंध जोड़े रखता है। परंतु जैसे उसे यह आभास होता है कि अब इसका महत्व नहीं रह गया वैसे ही व्यक्ति अपना रास्ता बदल लेता है।

इस लोकोक्ति का भाव हाल के एक घटना से महसूस कर सकते है। आप सबको पता होगा कि उत्तराखंड राज्य के उत्तरकाशी में टनल के निर्माण कार्य के समय टनल (सूरंग) का एक हिस्सा धंस गया था। फलस्वरूप इकतालीस मजदूर उस टनल में फंस गए। एनडीआरएफ, एसडीआरएफ व सेना की मदद से लगभग सतरह दिनों की कड़ी मशक्कत के बाद उन सभी फंसे मजदूरों को रेस्क्यू किया

गया। रेस्क्यू की इस सफलता के बाद राजनेताओं में श्रेय लेने की होड़ लग गई। मीडिया जगत भी इसमें पीछे नहीं था। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि सुरंग धंसने की घटना का दोषी कौन है इसकी चर्चा तक नहीं हुई। किसी ने सवाल तक नहीं किया कि इसके लिए जिम्मेदार कौन हैं? इस उदारहण से भी लोकोक्ति आधारित इस निबंध का भाव स्पष्ट होता है। कामयाबी हर किसी को आकर्षित करती है। जबकि नाकामयावी से लोग दूर भागते है। बनला के साथ सब लोग अपना नाम जोड़कर गौरवान्वित होते है जबकि नाकामयाबी से मुंह फेरते हैं।

कभी आपने सुना ही होगा कि निर्माणाधीन पुल अथवा फ्लाइओवर अचानक धंस गया जिसमें दब कर कई लोगों की मौत हो गई। इस तरह की घटना अक्सर लापरवाही और भ्रष्टाचार का परिणाम होता है। लेकिन इस घटना की जिम्मेवारी लेने को कोई तैयार नहीं होता। निर्माण से जुड़ी कंपनी और सरकार के अधिकारी दोनों इस घटना के लिए एक दूसरे को जिम्मेदार ठहराते है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भागलपुर में गंगा नदी पर निर्माणाधी पुल है। लेकिन स्थिति इसके विपरीत हो तो माजरा कुछ अलग ही दिखता है। अर्थात जब पुल और फ्लाइओवर का उद्घाटन करना हो तो सभी अपनी भूमिका का प्रचार-प्रसार करते नहीं थकते। इसका अर्थ हुआ कि बनला के सब सार होना पसंद करते है जबकि बिगडला के कोई पाहुनों नहीं होना चाहता है।

इसी तरह कई योजनाएं हैं जिसमें कुछ सफल होती हैं जबकि कुछ फिसड्डी साबित होती है। जो योजना सफल होती है उसका प्रचार-प्रसार खुलकर किया जाता हैं जबकि असफल योजना का जिक्र तक नहीं होता। अर्थात् सफलता का श्रेय लेने की चाहत सभी को रहती है वहीं असफलता का दोष कोई नहीं लेता।

प्रसिद्ध कवि रहीम के दोहे की यह पंक्ति इस स्थिति की सच्चाई बखूबी बयां करती है-

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।

पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाये ॥

जरा कल्पना कीजिए! किसी कॉलेज में स्वतंत्रता दिवस पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के दौरान किसी बात का विवाद इतना बढ़ गया कि मार-पीट तक हो गई। इस घटना में कुछ लोग जख्मी भी हो गए। माहौल अचानक से तनावपूर्ण हो गया और पुलिस प्रशासन को इसमें हस्तक्षेप तक करना पड़ा। जरा सोचिये कि उस कार्यक्रम के आयोजक क्या अब किसी को बता पायेगा कि इसका कर्ता-धर्ता वह खुद था। नहीं, चूंकि अपना नाम खराब करना भला कौन चाहेगा। वहीं अगर कार्यक्रम शांतिपूर्वक संपन्न हो जाता। दर्शक खुशी-खुशी घर को जाते और सब की जुबान से उस कार्यक्रम की तारीफ होती तब अवश्य ही आयोजक की कोशिश इस कार्यक्रम की सफलता का श्रेय लेने की होती।

ऐसा नहीं है कि केवल इतना ही उदाहरण इस लोकोक्ति का भाव स्पष्ट करता है। हमारे समाज के कई क्षेत्रों में इस तरह की घटनाएं होती रहती है जो यह साबित करता है कि **'बनला के सब सार होला आ बिगड़ला के कोई पाहुनो न होखे।'**

बिहार-झारखंड की एक प्रसिद्ध घटना के बारे में आपने सुना ही होगा। वह घटना है- **माउंटेनमैन श्री दशरथ मांझी** के दृढ़ निश्चय और अपार जीत की। इनसे जुड़ा हिंदी सिनेमा का एक प्रसिद्ध डायलॉग हैं- **"जब तक तोड़ेंगे नहीं तब तक छोड़ेंगे नहीं"**। क्या आपको पता हैं कि यहां **'तोड़ेंगे'** शब्द का भाव इतना गहरा है कि सातों समुद्र के पानी से भी इसे भरा नही जा सकता। जब श्री दशरथ मांझी की गर्भवती पत्नी को अस्पताल जैसी बुनियादी सुविधा न मिल सका, जब उन्हें पानी के लिए ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ाई करनी होती थी तब समाज या राजनीति का कोई भी प्रतिनिधि उनके साथ खड़ा न हुआ। लेकिन अप्रिय दुर्घटना से टूट चुके श्री दशरथ मांझी ने जब पहाड़ के सीने को हथौड़े से तोड़-तोड़ कर नया इतिहास लिखा तो हर आम और खास लोग उन्हें शाबाशी और सम्मान देने पहुंचने लगे और उनका तथाकथित सार बनने को सबसे आगे की पंक्ति में **मुंह चियारे खड़े दिखे**।

पता नहीं हमारे समाज के लोग **दोमुंहे** और **दोधारी** भावना वाले क्यों होते हैं? हो सकता है कि शायद हमारे समाज ने इसे ही स्वीकार किया हो। बात केवल बिहार की ही नहीं है, विश्व में कहीं भी चले जाएं इस लोकोक्ति के उदाहरण वहां मिल ही जाएगा। खेल, सिनेमा, राजनीति, व्यापार, आध्यात्म आदि में ऐसे लाखों उदाहरण भी इस लोकोक्ति के भाव को पुष्ट करता है। **खेल में** सचिन तेंदुलकर, विराट

कोहली, सूर्यकुमार यादव, महेंद्र सिंह धोनी, ब्रायन लारा, पीवी सिंधु, साइना नेहवाल, ध्यानचंद आदि, **सिनेमा में** नवाजुद्दीन सिद्दीकी, शाहरुख खान, मनोज बाजपेई, पंकज त्रिपाठी, सुशांत सिंह राजपूत (स्वर्गीय) आदि, **राजनीति में** लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, नीतीश कुमार, नरेंद्र मोदी आदि, **व्यापार में** धीरूभाई अंबानी (स्वर्गीय), रोमन अब्रामोविच, डो वॉन चान्ग, ओपरा विन्फ्री आदि, **आध्यात्म में** ओशो रजनीश, गौतम बुद्ध आदि जब अपने संघर्ष समय में थे तब कोई इनके साथ खड़ा न था। लेकिन जब उन्होंने स्वयं को स्थापित किया तब पूरी दुनिया के लोग उक्त लोकोक्ति के भाव को स्पष्ट करने में दौड़ लगाने लगे।

निर्विवाद रूप से इस क्षेत्र में जो सबसे अच्छा और सटीक उदाहरण मेरे ह्रदय के करीब है वह है **बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर**। दुनिया का शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो इन्हें और उनके संघर्ष को न जानता हो। यहां उनकी कहानी कहकर मैं पन्ना नहीं भरूंगा क्योंकि मैं यह मान कर चलता हूं कि इस महात्मा के जीवन परिचय से आपलोग वाकिफ होंगे। लेकिन एक चीज समझिए; जब अंबेडकर भारतीय समाज की कुरीतियों और राजनीतिक अपारदर्शिता से लड़ रहे थे तब वे बिल्कुल अकेले थे। कोई भी उनके साथ न था। विशेषकर समाज के सवर्ण लोग। लेकिन जब स्थिति से लड़कर वह स्थापित हुए, तब समाज का हर वर्ग, राजनीति के सत्ताधारी और विपक्षी लोग अपने आप को उनका प्रतिबिंब बताने में पीछे नहीं हट रहे। आज अंबेडकर सबके हैं।

एक समय था जब सुब्रतराय सहारा के साथ भारत का हर परिवार जुड़ा था क्योंकि वे **"बनला"** की स्थिति में थे। समय के पहिए के प्रभाव में उनकी स्थिति **"बिगड़ला"** होती गई और लोग उनसे दूर होते गए। औरों की तो बात छोड़िए, खुद उनके परिवार के लोग भी अंतिम 'बिगड़ला' समय में उन्हें छोड़कर विदेश चले गए। इसलिए यह जरूरी है कि एक व्यक्ति के रूप में चाहे आप परिवार के हिस्सा हो या समाज के सदैव अपने आप को "बनला" की स्थिति में रखें। इसी से मिलता जुलता एक उदाहरण हमारे राज्य के पड़ोसी झारखंड में देखने को मिलता है। वहां एक भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हुआ करते थे जिनका नाम था **सजल चक्रवर्ती**। जब वे झारखंड के मुख्य सचिव रहे तो सभी लोग उनसे जुड़े रहे। लेकिन चारा घोटाले में माननीय न्यायालय द्वारा दोषी करार दिए जाने के बाद सभी लोगों ने उनसे किनारा कर लिया। यहां तक कि बीमारियों से जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ा तो उनके परिवार के लोग भी उन्हें छोड़ गए।

इसरो को आज कौन नहीं जानता। जब इसकी स्थापना हुई थी तब इसको तकनीकी हस्तांतरण के लिए विश्व का कोई भी देश तैयार न था। यहां तक की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की अंतरिक्ष एजेंसी का सब उपहास उड़ाते थे। लेकिन हम भारतीय कहां मानने वाले थे। दुनिया के ताने सुने, धोखा खाया और स्वयं को अपने सीमित संसाधनों से तकनीकी विकास कर आसमान में सुराख करने वाली मशीने बनाई, हमारी तरक्की और तकनीकी विकास ने दुनिया को उसकी औकात दिखाई; तब जाकर विश्व के विकसित देशों ने इसरो का लोहा माना। अन्य वैश्विक अंतरिक्ष एजेंसी की तुलना में इसरो कम कीमत में विदेशी उपग्रहों (विकसित व विकासशील देशों के) को अंतरिक्ष की गोद में सफलतापूर्वक स्थापित कर रहा है। इसलिए आज इसरो विश्व का चहेता बना हुआ है। वैश्विक शक्ति का इसरो के प्रति वर्तमान में जो नजरिया है वह इस लोकोक्ति को सही साबित करता है।

इस तरह बिहार की लोकोक्ति **बनला के सब सार होला आ बिगड़ला के कोई पाहुनो न होखे'** समाज की कटु सच्चाई को बयां करती है। इसमें कोई दो राय नहीं है।